हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रयोगशीलता – शंकर शेष के नाटक के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषण

डॉ. कंचन सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

हिन्दी विभाग

दयानंद आर्य कन्या डिग्री कॉलेज

मुरादाबाद (उ.प्र.)

हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रयोगशीलता का वास्तविक उन्मेंष स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुआ। यह वही समय था जब राजनीतिक और सामाजिक स्तरों में आ रहे बदलावों ने परंपरागत मान्यताओं, मूल्य और विचारों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। स्वतंत्रता पूर्व आदर्शवादी रचना संसार और स्वप्निल कल्पनाएं बिखरने लगीं और उसके स्थान पर कठोर यथार्थवादी धरातल उपस्थित होने लगा। बेरोजगारी, भूख, गरीबी, कुपोषण, भ्रष्टाचार, संत्रास और मूल्य विघटन की जटिल स्थितियों ने आम आदमी की सोच को और जरूरतों को पूरी तरह से बदल दिया। आम आदमी की जीवन पद्धति में आए बदलावों के साथ–साथ साहित्य और विशेषकर नाटक साहित्य में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। स्वतंत्रता के उपरांत जनजीवन में वैज्ञानिक आविष्कारों, पूंजीवादी व्यवस्था के प्रभावों तथा नाट्य सृजन के स्तर पर सार्त्र, कामू ,बैकेट ,ब्रेख्त आदि के प्रभाव से हिन्दी नाटक का चरित्र भी पूरी तरह से बदलने लगा। कथ्य व रूपबंध की दृष्टि से परंपरागत शास्त्रीय मानदंडों को अस्वीकार किया जाने लगा और नए रूप की खोज के लिए नए– नए प्रयोग होने लगे। डॉक्टर सुषमा वेदी तत्कालीन रंगमंच पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं –" हिन्दी नाट्य के संदर्भ में प्रयोग शब्द का सजग व्यवहार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ स्वतंत्र देश की कलात्मक गतिविधियों को जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आका जाने लगा तो पाया गया कि हमारे पास रंगमंच की कोई भी नियमित परंपरा नहीं थी जिसे हिन्दी रंगमंच का नाम दिया जा सके। यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी बीसवीं शताब्दी के आरंभ में अमरीकी रंगमंच की जिस प्रकार अमरीकी रंगमंच आरंभ में यूरोप की पतनशील तथाकथित यथार्थवादी लेकिन मूलतः मलोड्रामेटिक विक्टोरियन नाट्य– परंपरा का हिन्दी संस्करण पारसी रंगमंच था और दूसरी ओर से शॉ और ईब्सन के नाटकों का आदर्श लिए केवल नाम के तौर पर ही एमेच्योर यथार्थवादी रंगमंच था या पाठ्य नाटक थे। इसलिए अब हमें भी एक नए, निजी रंगमंच की खोज की तैयारी करनी थी , रंगमंच या नाट्य के नए सार्थक रूपों की खोज के लिए प्रयोग का माध्यम अपनाना था।"(1)

प्रयोग के स्तर पर हिन्दी रंगमंच की नवीन खोज और स्थापना स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य की बड़ी घटना मानी जा सकती है। इब्राहिम अल्काजी, सत्यदेव दुबे , श्यामानंद जालान, ओम शिवपुरी, राजेंद्र नाथ, देवेंद्र राज अंकुर आदि रंग कर्मियों के प्रयास से रंगमंच के प्रति एक दृढ़ आस्था के आविर्भाव से व्यवहारिक नाट्य लेखन के अभाव की पूर्ति का तीव्रता से प्रयास हुआ। समसामयिक हिन्दी नाटकों की नवीन प्रयोग शील नाट्य धारा न केवल हिन्दी रंगमंच को अंतरराष्ट्रीय स्तर की पहचान दी है अपितु कथ्य एवं अभिव्यक्ति के धरातल पर आम जनता के निकट भी ला खड़ा किया है आज का नाटक दर्शक को प्राचीन मान्यता अनुसार आनंद प्राप्त नहीं कराता वरन् उसे विक्षुब्ध व विचलित करता है। युग के विसंगत परिवेश और उनमें छटपटाते मनुष्य की पीड़ा को स्वर देना नए नाटककार का कर्तव्य बन गया है। जिसकी पूर्ति के लिए कथानक और शिल्प के धरातल पर अनेक प्रयोग हो रहे हैं। प्रयोगशील नाटकों की यह परंपरा हिन्दी नाट्य साहित्य की अपनी उपलब्धि है।

समसामयिक नाटकों में कथ्यगत नवीनताओं का अनेक स्तरों पर विकास हुआ है। बदलते युग परिवेश के साथ–साथ नाटकों के कथ्य में भी परिवर्तन आया है। पश्चिम में नाट्य आंदोलन का प्रभाव भी समकालीन नाट्य चेतना के कथ्य के स्तर पर देखा जा सकता है। विसंगत नाटकों का प्रारंभ इस परंपरा के प्रारंभ का सूचक है । इतिहास पुराण से अलग सामाजिक और राजनीतिक नाटकों की एक नवीन धारा का सूत्रपात हुआ है। किंतु पिछले पचपन वर्षों से नाट्य साहित्य में इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि संवेदना के स्तर पर इतिहास और स्मृतियों से नाटककार पूर्णतः विरक्त नहीं हो पाया है। हां इतना अवश्य है कि इतिहास पुराण का नाटकीय कथ्य में बदलाव और उसकी प्रयोगशीलता और प्रयोजनशीलता की आधार भूमि बदलती गई है।

समसामयिक नाटकों के नए कथ्यगत प्रयोग को लेकर डॉ रीता कुमारी लिखती हैं –"प्रायः नाटककारों ने वर्तमान युग के राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों, मानवीय संबंधों की हास्यास्पद स्थिति, औद्योगिक युग की यांत्रिक जिंदगी के अभिशापों बेरोजगारी, पूंजीवाद, और सत्ता की भ्रष्ट नीति, दो पीढ़ियों के संघर्षों, आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणामों, स्त्री–पुरुष के संबंधों, युवा– पीढ़ी की दिशा भ्रांत स्थिति आदि को कथ्य के रूप में अपनाकर नाटक को प्रत्यक्ष जीवन के निकट लाने के प्रयोग किए हैं। इसके लिए इतिहास का आश्रय लेकर सामयिक युग का प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत करने के प्रयत्न भी हुए हैं। अंधायुग, आषाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस, इसी दृष्टि का परिणाम है। इतिहास यहाँ युग– युग के सत्य को व्यक्त करने का माध्यम मात्र है। इसी युग में ऐतिहासिक व पौराणिक चरित्रों को आदर्श व गौरव के लबादे से मुक्त कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने के सफल प्रयोग हुए। हमारी सामाजिक मान्यताओं में प्रायः मनुष्य की दुर्बलता को देवत्व के लबादे से छिपाने का प्रयास किया है जबकि नए नाटककार ने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा और उसे ही उसकी शोषित व विसंगत अवस्था के साथ प्रस्तुत किया।"(2)

समकालीन नाटककार कथ्य के स्तर पर इतिहास का चुनाव इसलिए करते हैं क्योंकि वह समसामयिक जीवन के विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्त एवं परिलक्षित करना चाहते हैं। "कोणार्क" इस परंपरा का प्रथम प्रयोगशील नाटक है, जो कलाकार के अंतर्द्वंद की कथा प्रस्तुत करता है, शोषण का विरोध करता है और नए व पुरानी पीढ़ी के विरोध को प्रस्तुत करता है। "आषाढ़ का एक दिन" की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। वह प्रतिक्षण परिवर्तनशील मानवी अंतरसंबंधों को एवं कलाकार के मन का बारीकी से अध्ययन करता है। "लहरों का राजहंस", भोग एवं वैराग्य के द्वंद का नाटक है। "अंधा युग" द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों को रेखांकित करता है। "नरसिंह कथा" मूल्य हीन शक्ति के मध्य से उदित होने वाले पशुता का चित्रण करता है। "अग्निलीक" रामकथा को नवीन समसामयिक दृष्टि से सम्मुख रखता है, यहाँ राम राजतंत्रात्मक शक्ति के प्रतीक हैं। नारी चेतना का नया स्वर भी इस नाटक में मिलता है। "खजुराहो का शिल्पी" ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित नाटक है किंतु जीवन की तात्विक व्याख्या प्रस्तुत करता है। "कोमल गांधार" में गांधारी के चरित्र को पुनः विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

समकालीन नाटकों की कथ्यगत विशेषताएं बताते हुए डॉ दशरथ ओझा लिखते हैं– कथ्य को रुपायित करते हुए नाटककार उसे पूर्णतः दृश्य रूप में अनुभव कराने का प्रयत्न करते हैं। कथ्य को शब्दों में व्यंजित करने का इतना प्रयत्न नहीं करते हैं। पूरे दृश्य में विशेषकर कथ्य के सूत्रों को उभारने के प्रयत्न में ही नया नाट्य लेखन की प्रभाव विष्णुता प्रकट होती है।"(3) नए नाटकों की विशेषता है कि उनमें एक से अधिक कथ्य की योजना प्रस्तुत की जा रही है। "लहरों का राजहंस", "आषाढ़ का एक दिन", "सेतुबंध", "एक और द्रोणाचार्य", "अग्निलीक", "अंधायुग" आदि नाटकों में यद्यपि इतिहास पुराण को आधार बनाया गया है, लेकिन कथानक में इनका प्रयोग बहुत कमजोर है।

एक ऐतिहासिक तथ्य को आधार बनाने पर भी इनके कथ्य बहुआयामी हैं। "कोणार्क" में नाटककार ने एक के साथ अनेक बातें बताने का प्रयास किया है। "अरे मायावी सरोवर" पहले स्तर पर रोचक कथा प्रस्तुत करता है, दूसरे स्तर पर समकालीन विसंगतियों का चित्रण करता है, तीसरे स्तर पर देशांतर के अनुभवों का जीवंत दस्तावेज भी बन गया है। सुरेंद्र वर्मा ,लक्ष्मी नारायण लाल, गिरिराज किशोर ,भीष्म साहनी, नरेंद्र मोहन ,प्रताप सहगल ,आदि नाटककारों ने प्रायःसभी नाटकों में एक से बढ़कर कथ्य प्रयोग हुए हैं। नए नाटकों की नाट्य वस्तु के चयन के विषय में नर नारायण राव लिखते हैं –"समकालीन हिन्दी नाटकों की कथ्य चेतना में निरंतर निखार आ गया है। आज के जीवन और जगत से जुड़े गंभीर विषयों को सविस्तार इन नाटकों में अभिव्यक्त किया जा रहा है। इन नाटकों के मुख्य विषय में ऐतिहासिक पौराणिक एवं लोक– कथा– आश्रित कथानकों में समसामयिकता का आरोप स्त्री–पुरुष संबंधों के बदलते हुए पार्श्वों का अंकन ,व्यक्ति और सामाजिक जीवन की विभिन्न विसंगतियों का दर्शन, सत्ता और व्यवस्था की विकृतियों का चित्रण व व विरोध, राजनीतिगत चरित्र हीनता का प्रकटीकरण, जीवन और जगत के विघटन शील मूल्यों का उद्घाटन, जनसंख्या और औद्योगिकरण के परिणामों का अंकन, नए व पुराने जीवन मूल्यों की पारस्परिक संघर्ष, तेजी से बदलता परिवेश, नई पुरानी पीढ़ी का अंतर, वर्जनाओं का उच्छेदन आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिन को आधार बनाकर आज का हिन्दी नाटक अपने कथ्यगत स्वरूप को नया वैशिष्ट्य दे रहा है।"(4) बदलते परिवेश व चेतना के अनुरूप हिन्दी नाटक में भी नए आयाम परिलक्षित हो रहे हैं, अपने व्यक्तित्व की सार्थक तलाश व पहचान की कोशिश में यह अधिक प्रमाणिक व मौलिक बनकर उभरा है । वस्तुतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी नाटकों के कथ्य शिल्प शैली में जो अभूतपूर्व परिवर्तन आए हैं वह संतोषजनक कहे जा सकते हैं। जहां तक डॉ शंकर शेष का प्रश्न है उन्होंने इन आयामों को ग्रहण करते हुए उसे सफलतापूर्वक अपने नाटकों में चित्रित किया है।

डॉ शंकर शेष के नाटक पारिवेषिक पीड़ा, वैभित्स्य, विघटन मूल्य– संक्रमण, संवाद हीनता और अस्तित्व संकट का प्रमाणिक त्रासद दस्तावेज है। इसमें हमारी समकालीनता का विकृत विकराल और भयानक चेहरा स्पष्ट उभरकर सामने आता है। पिछले दो दशकों में व्यक्ति के केंद्रच्युत और धुरीहीन होकर अंधी गलियों में परिक्रमित होने का एहसास गहन से गहनतर हुआ है। अपने ही द्वारा उत्पन्न विराट यांत्रिकता और मशीनीकरण के आगे आदमी बौना महसूस कर रहा है। जीवन प्रवाह से च्युत वह व्यक्ति विशेष न रहकर मात्र जातिवाचक, संज्ञा स्त्री– पुरुष, सर्वनाम या

संख्या रह गया है। जीवन एक असहाय भार, भद्दा और बेतुका मजाक बन गया है। विगत वर्षों में विभिन्न भारतीय राजनीतिक धरातलों पर जो भ्रष्टाचार, लोलुपता, स्वार्थन्धता, मूल्य हीनता संकीर्ण सरोकार विरुपता आदि जन्में–पनपे हैं उन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटक को एक विशेष भंगिमा तेवर, स्वर और विस्तृत आधार– भूमि प्रदान की है, आस्था विश्वास के टूटने और तज्जनित आक्रोश के तीव्र स्वर इनमें स्पष्ट सुने जा सकते हैं।

वास्तव में शंकर शेष का संपूर्ण कृतित्व नाटक के इर्द–गिर्द ही घूमता है ।उनकी मान्यता थी कि "नाटक लिखने से पहले मैं अपने कल्पना चक्षुओं से उसे पूरा देखता हूँ। कल्पना के भव्य मंच पर एक अकेले दर्शक के सम्मुख होते हुए नाटक का जो सुख मुझे मिलता है वह वर्णानातीत है इसलिए अन्य किसी भी विधा की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। यदि कहीं अपने विचारों को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त करना भी चाहे तो उतना अधिकार उस विधा पर पाया नहीं।"(5)

डॉ शेष ने अपने नाटकों के मनुष्य के घुटनशील स्वरों को वाणी प्रदान की है। इनके नाटकों में द्वंद्व प्रमुख रूप से उभरा है। दूसरे शब्दों में कहें तो द्वंद्व इनके नाटकों की आत्मा है। संकल्प विकल्प का, आस्था अनास्था का, विश्वास अविश्वास का, प्रेम व घृणा का, आकर्षण व विकर्षण का, अलग व सलग का, यथार्थ अयथार्थ का द्वंद इन के नाटकों की धुरी रहा है। इस अंतर्यात्रा की छटपटाहट और लक्ष्य पर्यंत उसे जारी रखने की व्याकुलता का एक स्पष्ट और अंतरंग परिचय यहां मिल जाता है।

समकालीन जटिल, प्रश्नाहत, बहुआयामी और बहुस्तरीय मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति शेष जी के नाटकों का मुख्य कथ्य रही है। शंकर शेष सही अर्थों में कलाकार थे। उन्हें कला की परख व पहचान थी। नाटक को जीवन पर्याय मानने वाले शंकर शेष के लिए नाटक ही सर्वस्व रहा। उनके नाटक "रंगमंचीय सरलता, सहजता और सादगी के आदर्श हैं। उन्हें बिना किसी तामझाम और उपकरण विशेष के कहीं भी आसानी से खेला जा सकता है....आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच के विकास में शंकर शेष का योगदान सभी दृष्टि से महत्वपूर्ण ठहरता है। हिन्दी रंगमंच को पूर्णता और परिपक्वता की ओर ले जाने में उसके राष्ट्रीय स्वरूप को स्पष्ट करने में उनके नाटकों की अहम भूमिका रेखांकनीय है। यह सभी मंचन के निकष पर खरे उतरे हैं। खेले पहले गए हैं और प्रकाशित बाद में हुए हैं। "खजुराहो का शिल्पी", "एक और द्रोणाचार्य", "अरे मायावी सरोवर", "रक्तबीज", "चेहरे", "पोस्टर" और "कोमल गंधार" जैसे नाटकों ने जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं वह शंकर शेष को हिन्दी नाट्य व रंग–जगत में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देते हैं।"(6) शंकर शेष के विषय में "दीर्घा" में लिखा है– "नाट्य समारोह में हिन्दी के मौलिक नाटककार धीरे–धीरे अपना स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं ।इस संदर्भ में शंकर शेष का नाम उल्लेखनीय है क्योंकि सबसे अधिक उनके नाटक खेले गए हैं। मुंबई के ग्रुप आविष्कार की ओर से जयदेव हट्टंगड़ी के निर्देशन में "आधी रात के बाद" और "पोस्टर" प्रस्तुत किए गए। "पोस्टर" में विचार बोध और रंग बोध में अद्‌भुत अन्विति है।"(7)

डॉ जाधव के अनुसार –"नाटककार शंकर शेष की सन् 1955 से लेकर सन 1981 तक की उनकी अपनी प्रदीर्घ नाट्य–यात्रा में कथ्य शिल्प एवं शैली की विविधता तथा प्रयोगशीलता स्पष्ट रूप से छलकती है। स्वातंत्र्योत्तर छठे, सातवें, एवं आठ में दशकों के नाट्य विकास की प्रक्रिया के वे साक्षी रहे हैं। डॉक्टर शंकर शेष मोहन राकेश, जगदीश चंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, विष्णु प्रभाकर, विनोद रस्तोगी लक्ष्मी नारायण लाल, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, भुवनेश्वर, लक्ष्मीकांत वर्मा, विपिन अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अमृत राय, सुरेंद्र वर्मा, दया प्रकाश सिन्हा, रमेश बक्षी, सुशील कुमार सिंह, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस, सत्यव्रत सिन्हा, आलोक शर्मा, तथा नरेंद्र कोहली जैसे नाट्य कारों के साथ स्वातंत्र्योत्तर तीन दशकों की हिन्दी की नाट्य यात्रा देख चुके हैं इसी कारण उनके नाटक बदलते युग संदर्भों का वहन करने में सक्षम हैं।"(8)

"मूर्तिकार", "रतनगर्भा" तथा "बाढ़ का पानी" में अंधविश्वास तथा जाति– पाति को लेकर समाज की मानसिकता को उजागर किया है। राजनीतिक दबाव और क्रूरता को "एक और द्रोणाचार्य" तथा कालजई "कोमल गांधार" में दर्शाया गया है। कर्तव्य की आड़ में पाप करने वाली हमारी नियति को कोमल गांधार में चित्रित किया गया है। महत्वाकांक्षा के कारण होने वाले अधःपतन "बिन बाती के दीप" तथा "बंधन अपने–अपने" में दिखाई देता है। देश और समाज के प्रति आस्था पूर्ण दृष्टिकोण "पोस्टर" तथा "आधी रात के बाद" में चित्रित हुआ है। "चेहरे" में वेश्या उद्धार तथा "बाढ़ का पानी" व "पोस्टर" में वर्ग संघर्ष की समस्या को उठाया गया है।

डॉक्टर शंकर शेष के नाटक मंचीयता की दृष्टि से सफलता प्राप्त कर चुके हैं। नाटक की दृश्य योजना, कथोकथन, भाषा– शैली तथा नाटकीय कार्य–व्यापार पर निर्भर अभिनेयता को ध्यान में रखकर ही उन्होंने नाटकों का सृजन किया है और उनका निरंतर रंगमंच पर प्रयोग करके उन्हें दर्शकों तक पहुंचाने के लिए भी वे प्रयत्नशील रहे हैं। डॉ वसुधा सहस्त्र बुद्धे ने डॉक्टर शेष के नाट्य साहित्य की प्रशंसा करते हुए कहा है

–मर्यादित कालावधि में नाटक को पूरे प्रभाव के साथ प्रस्तुत करना प्रायोगिक रंगमंच की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है । डॉ शंकर शेष के सभी नाटक दो घंटे में अपने संप्रेष्य को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। उनकी यह विशेषता असंदिग्ध है।"(9)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शंकर शेष व उनके समसामयिक नाटककारों ने इतिहास– पुराण तथा मिथक प्रतीकों के माध्यम से समकालीन संदर्भों को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह नाटक अतीत के आख्यान मात्र न रह कर भारतीय जनजीवन की सामयिक चिंताओं संवेदनाओं और भावनाओं की विभिन्न भंगिमाओं में रुपायित करते रहें। इस रूप में इन नाटकों में वर्तमान काल के असंगतियों विडंबनाओं का इतिहास– पुराण की कथाओं में उत्प्रेरित करके आज के कटे हुए जीवन, टूटी हुई आस्था, आक्रोश, निराशा, व्यग्रता, व्यवस्था की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। इन नाटकों में आधुनिक जीवन से उत्पन्न मूल्य संकट से साक्षात्कार करने उस से जूझने और जीवन की सार्थकता की खोज की अथक जिज्ञासा तथा अनवरत यात्रा करने को अदम्य सामर्थ्य मौजूद है। अतः इतिहास– पुराण मिथक के माध्यम से प्रतिफलित समकालीन बोध की अभिव्यक्ति को हिन्दी नाट्य साहित्य की अमूल्य धरोहर कह सकते हैं।

डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. शेष को भारतेंदु, प्रसाद व मोहन राकेश की अगली शंकर कड़ी के रूप में देखते हैं। जहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिन्दी की नाट्य– कला को छोड़ा था वहां से जयशंकर प्रसाद ने शुरू किया और जहां से जयशंकर प्रसाद ने छोड़ा था वहां से जगदीश चंद्र माथुर और मोहन राकेश उसे लेकर आगे बढ़े। यह कहना असंगत न होगा कि जिस रंग परंपरा को इन्होंने स्थापित किया उसे डॉ. शेष ने यहीं थाम लिया और निःशेष होने तक इसी साधना में लगे रहे। अतः स्वातंत्र्योत्तर रंगकर्म के इस अनुष्ठान में उनकी भूमिका सदैव चिर स्मरणीय रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1– हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में ,डॉ सुषमा बेदी,पृ.6/

2– स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक,मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, डॉ. रीता कुमार, पृ.157/

3– आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव, डॉ दशरथ ओझा, पृष्ठ 17/

4– नया नाटकः उद्भव और विकास, डॉक्टर नर नारायण राव, पृष्ठ 216/

5– सारिका : 16 जनवरी 1982 में प्रकाशित डॉ शंकर शेष के साथ श्री भगवान अटलानी से बातचीत।

6– हिन्दी नाटक और रंगमंच समकालीन परिदृश्य, डॉक्.बृज राज किशोर पृष्ठ 98/

7– दीर्घा ,अंक 33, पृ.21

8– रंगधर्मी नाटककार शंकर शेष, डॉ. प्रकाश नारायण जाधव, भूमिका से/

9– शंकर शेष का नाट्य साहित्य, डॉ. वसुधा सहस्त्रा बुद्धे पृष्ठ 23/

10– डॉ. सिद्धनाथ कुमार प्रसाद के नाटकों का पुनर्मूल्यांकन पृष्ठ 212/